क॰ पौस्तोवस्की

लोहे की अंगूठी

To.
Dear Guriya,
With lots of love,
Pinky ('83)

क॰ पौस्तोवस्की

लोहे की अंगूठी

अनुवादक: योगेन्द्र कुमार नागपाल

चित्रकार: त॰ येर्योमिना

प्रगति प्रकाशन
मास्को

मोख़ोवोये गांव में जंगल के बिल्कुल पास ही कुज़्मा दादा अपनी पोती वार्या के साथ रहते थे।

इस साल कड़ाके की सर्दी थी, तेज़ हवाएं चल रही थीं और ख़ूब ज़ोरों से बर्फ़ पड़ रही थी। सारे जाड़े में एक बार भी पाला कम नहीं हुआ और बर्फ़ पिघलकर तख़्तों की छत पर से टपाटप-टपाटप करती नहीं गिरी। रात को जंगल में ठंड से अकड़े भेड़िए हुआं-हुआं करते थे। कुज़्मा दादा कहते कि उन्हें लोगों से जलन होती है, इसीलिए हुआते हैं: भेड़िए भी झोंपड़े में रहना चाहते हैं, वे भी अलावघर के पास लेटकर ठंड से जमी अपनी झबरीली खाल गरम करना और खुजलाना चाहते हैं।

अभी जाड़ा आधा ही बीता होगा कि दादा का तंबाकू ख़त्म हो गया। दादा को ज़ोरों से खांसी आने लगी। वह सेहत ख़राब होने की शिकायत करते और कहते कि बस एक दो दम लगा लूं, तो आराम मिले।

इतवार को वार्या दादा के लिए तंबाकू लेने पास के गांव पेरेबोरी गई। गांव के पास से रेल की लाइन गुज़रती थी। वार्या ने दादा के लिए तंबाकू ख़रीदा, उसे छींट की थैली में लपेटा और स्टेशन पर गाड़ियां देखने चली गई। पेरेबोरी में गाड़ियां बहुत कम ही रुकती थीं, ज्यादातर वे धड़धड़ाती हुई वहां से निकल जाती थीं।

प्लेटफ़ार्म पर दो सिपाही बैठे थे। उनमें एक दाढ़ीवाला था, उसकी भूरी आंखें मुस्कराती लगती थीं। इंजन गरजा। वार्या ने देखा भाप से घिरा इंजन दूर काले जंगल से धमाधम स्टेशन की ओर चला आ रहा था।

"एक्सप्रेस आ रही है!" दाढ़ीवाले सिपाही ने कहा। "देख री मुनिया, उड़ा देगी तुझे गाड़ी। आसमान में उड़ जाएगी तू।"

हवा से बातें करता इंजन स्टेशन पर आ गया। प्लेटफ़ार्म पर पड़ी बर्फ़ बवंडर सी उड़ने लगी और आंखों पर चिपक गई। फिर ठकाठक करते पहिए एक दूसरे के पीछे भाग चले। वार्या ने बिजली के खंभे को पकड़ लिया और आंखें बंद कर लीं: कहीं सचमुच ही यह बवंडर उसे ज़मीन से उठाकर गाड़ी के पीछे-पीछे उड़ा न ले जाए। गाड़ी निकल गई। धूल सी बर्फ़ अभी भी उड़ रही थी और धीरे-धीरे ज़मीन पर बैठ रही थी। दाढ़ीवाले सिपाही ने वार्या से पूछा:

"यह क्या है मुनिया, तेरी थैली में? तंबाकू है क्या?"

"तंबाकू," वार्या ने जवाब दिया।

"कुछ बेच दे री। तंबाकू पीने को बहुत मन हो रहा है।"

"कुज़्मा दादा ने बेचना मना किया है," वार्या ने सख़्ती से कहा। "यह उनकी खांसी की दवा है।"

"अरी वाह री, दुशाले में लिपटी कली। बड़ी सख़्त छोरी है तू," सिपाही बोला।

"पर तुम ऐसे ही ले लो, जितना चाहिए," वार्या ने कहा और थैली सिपाही की ओर बढ़ा दी। "लो, पी लो।"

सिपाही ने अपने ख़ूब मोटे और बड़े ओवरकोट की जेब में मुट्ठीभर तंबाकू डाल लिया, कागज़ में तंबाकू लपेटकर मोटी सी सिगरेट बनाई और पीने लगा। उसने वार्या की ठोढ़ी पकड़ी और मुस्कराते हुए उसकी नीली आंखों में देखा।

"अरी, वाह री, दो चुटियों की नीली कली," सिपाही ने कहा। "तेरा अहसान कैसे चुकाऊं मैं? चल यह ही सही।"

सिपाही ने ओवरकोट की जेब से लोहे की छोटी सी अंगूठी निकाली और फूंक मारकर उस पर चिपके तंबाकू और नमक के टुकड़े झाड़े। फिर अंगूठी को ओवरकोट के बाजू पर रगड़ा और वार्या की बिचली उंगली में पहना दी:

"ले पहन ख़ुशी से! जादूई अंगूठी है यह। देख कैसे चमक रही है!"

"ऐसा क्या जादू है इसमें, चाचा?" वार्या ने लजाते हुए पूछा।

"जादू यह है," सिपाही ने जवाब दिया, "कि अगर तू इसे बिचली उंगली में पहनेगी तो सेहत अच्छी होगी, तेरी भी और कुज़्मा दादा की भी। और अगर अंगूठी अनामिका उंगली में पहनेगी," सिपाही ने उसकी ठंड से लाल पड़ी उंगली खींची, "तो तेरे लिए कोई बहुत ही बड़ी ख़ुशी की बात होगी। या फिर अगर तू रंग-बिरंगी, चमत्कारों भरी दुनिया देखना चाहे तो अंगूठी तर्जनी में पहन लेना, ज़रूर देखेगी!"

"सच?" वार्या ने पूछा।

"तू इसकी बात पर भरोसा रख, मुनिया," ओवरकोट के ऊंचे उठे कालर में से दूसरे सिपाही की भारी आवाज़ आई, "यह जादूगर है। सुनी हैं कभी जादू की बातें?"

"सुनी हैं।"

"बस यही बात है," सिपाही हंस दिया। "लड़ाई में सुरंगों के मैदान मज़े से पार कर जाता था।"

"शुक्रिया," वार्या ने कहा और अपने गांव मोख़ोवोये भाग चली।

हवा चल पड़ी, बर्फ़ गिरने लगी—बहुत ही घनी-घनी, बड़े-बड़े फाहों सी। वार्या अंगूठी छूती जा रही थी। बार-बार उसे घुमाती और चमकते देखती।

"पर यह सिपाही चाचा ने छोटी उंगली का तो बताया ही नहीं," उसने सोचा। "उसमें पहनने से क्या होगा? चलो, मैं छोटी उंगली में अंगूठी पहनकर देखती हूँ।"

उसने अंगूठी छोटी उंगली में पहन ली। उंगली पतली थी, अंगूठी उस पर टिकी नहीं, पगडंडी के किनारे बर्फ़ पर जा गिरी और फ़ौरन उसमें गहरी धंस गई।

वार्या की सांस ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे रह गई। वह हाथों से बर्फ़ हटाने लगी, लेकिन अंगूठी नहीं दिखी। वार्या की उंगलियां नीली पड़ गईं। वे ठंड से इतनी अकड़ गईं कि मुड़ती ही नहीं थीं।

वार्या रो पड़ी। गुम गई अंगूठी! मतलब, अब कुज़्मा दादा की सेहत ठीक नहीं होगी, बहुत बड़ी ख़ुशी की बात भी नहीं होगी और वह रंग-बिरंगी चमत्कारों भरी दुनिया नहीं देख पाएगी। वार्या ने बर्फ़ में जहां अंगूठी गिरी थी, उस जगह देवदार की एक पुरानी टहनी गाड़ दी और घर चल दी। वह दस्ताने से आंसू पोंछती जा रही थी लेकिन वे फिर भी उमड़ आते और जम जाते। और इससे आंखों में चुभन और दर्द हो रहा था।

कुज़्मा दादा तंबाकू पाकर बहुत ख़ुश हुए। सारा घर उन्होंने धुएं से भर दिया। अंगूठी के बारे में उन्होंने कहा:

"तू दुखी मत हो, पगली। जहां गिरी है, वहीं पड़ी होगी। तू सीदोर को कह देख। वह तुझे ढूंढ़ देगा।"

बूढ़ा चिड़ा सीदोर डंडे पर कुप्पे सा फूला सो रहा था। सारी सर्दियां सीदोर कुज़्मा दादा के घर में अपनी मर्ज़ी से, मालिक की तरह रहता था। स्वभाव उसका ऐसा था कि वार्या तो
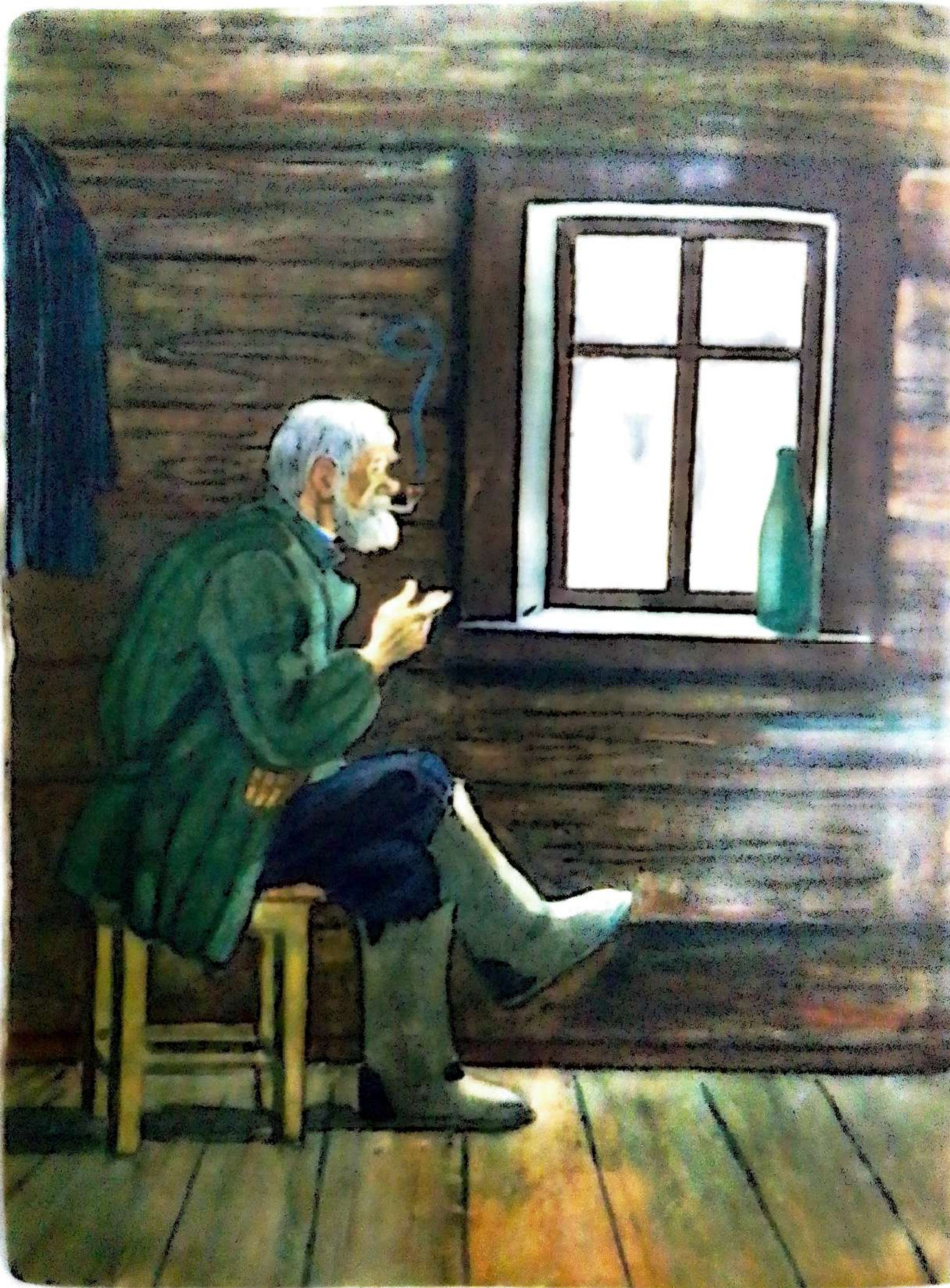
क्या, दादा तक से अपनी बात मनवा कर रहता था। खिचड़ी वह उनकी तश्तरियों में से ही लेता और रोटी भी हाथ में से नोचता। और अगर उसे भगाते तो बुरा मान जाता, फूलकर कुप्पा हो जाता, लड़ने लगता और इतने गुस्से से चीं-चीं करता कि छत के नीचे आस-पास के चिड़े-चिड़ियां इकट्ठा हो जाते। पहले वे ध्यान से सुनते और फिर देर तक शोर मचाते रहते। वे सीदोर के बुरे स्वभाव की निंदा करते: घर में रहता है, ठंड नहीं सहता, भूखा नहीं रहता, तो भी इसे संतोष नहीं।

अगले दिन वार्या ने सीदोर को पकड़कर रूमाल में लपेट लिया और जंगल ले गई। बर्फ़ में से टहनी का बस सिरा ही दिख रहा था। वार्या ने सीदोर को टहनी पर बिठा दिया और उससे अनुरोध किया:

"तू ढूंढ़ दे न! शायद मिल जाए तुझे!"

लेकिन सीदोर ने बर्फ़ पर शकभरी तिरछी नज़र डाली और चिचियाया:

"वाह ची! वाह ची! .. मैं कोई बुद्धू हूँ? .. वाह ची! वाह ची!" सीदोर ने दोहराया। वह टहनी से फुदका और वापस घर उड़ चला।

अंगूठी वैसे ही वहां पड़ी रह गई।

कुज़्मा दादा की खांसी ज़ोर पकड़ती जा रही थी। वसंत आते-आते वह अलावघर पर जा लेटे। वह बहुत कम ही वहां से उतरते और रह-रहकर पानी मांगते। वार्या उन्हें लोहे के कटोरे में ठंडा पानी देती।

बर्फ़ीली आंधियां चलतीं और गांव के घरों के चारों ओर ढेरों बर्फ़ जमा हो जाती।

जंगल में सनोबर बर्फ़ से लद गए थे और वार्या अब वह जगह नहीं ढूंढ़ पाती थी, जहां उसने अंगूठी गिरा दी थी। वह अक्सर अलावघर के पीछे छिपकर बैठ जाती। दादा पर तरस खाकर रोती और अपने को बुरा-भला कहती।

"बुद्धू कहीं की!" वह बुदबुदाती। "बड़ी शरारत सूझी थी, अंगूठी गिरा दी। ले इसका मज़ा! यह ले!"

अपने सिर पर मुट्ठियां मारकर वह अपने आप को दंड देती। और कुज़्मा दादा उससे पूछते :

"यह तू क्या शोर मचा रही है?"

"सीदोर को डांट रही हूँ," वार्या जवाब देती। "ऐसा बदतमीज़ हो गया है। हर वक़्त लड़ने को आता है।"

एक दिन सुबह-सुबह ही सीदोर खिड़की पर कूदने और शीशे पर चोंच मारने लगा। उससे वार्या की नींद खुल गयी। वार्या ने आंखें खोलीं और फ़ौरन ही भींच लीं। छत से एक के बाद एक लंबी-लंबी बूंदें गिर रही थीं। खिड़की से गरम-गरम धूप आ रही थी। कौवे कांव-कांव कर रहे थे।

वार्या ने बाहर झांककर देखा। गरम हवा के झोंके ने उसके बाल झंझोड़े।

"लो, वसंत रानी आ गई," वार्या ने कहा।

पेड़ों की काली-काली टहनियां चमक रही थीं, छत पर पड़ी बर्फ़ गीली हो गई थी और सरसर करती छत से फिसल रही थी। जंगल वसंत की ख़ुशी में बड़े मान से झूमता सा लगता था। वसंत रानी खेतों-मैदानों में बढ़ती जा रही थी। उसे खाई में झांकने भर की देर होती कि वहां कलकल करता पानी बहने लगता, धूप में चमचमाता। वसंत रानी बढ़ती जा रही थी

ग्रौर उसके हर पग के साथ जल-धाराग्रों का कलकल-स्वर ऊंचा ही ऊंचा होता जा रहा था।

जंगल में बर्फ़ काली पड़ गई। देवदार ग्रौर चीड़ के कत्थई कांटे, जो जाड़ों में झड़ गए थे, बर्फ़ के नीचे से दिखने लगे। फिर ढेर सारी टहनियां निकल ग्राईं—वे दिसंबर में बर्फ़ीले तूफ़ानों से टूट गई थीं। फिर पिछले साल झड़ी पीली पत्तियां नज़र ग्राने लगीं। कहीं-कहीं बर्फ़ के नीचे से ज़मीन निकल ग्राई ग्रौर बर्फ़ के ग्राख़िर बड़े-बड़े ढेरों के किनारे पहले फूल खिल उठे।

वार्या ने जंगल में देवदार की वह टहनी ढूंढ़ ली जो उसने बर्फ़ में ग्रंगूठी गिरने की जगह पर गाड़ दी थी। वह बड़ी सावधानी से पुरानी पत्तियों, कठफोड़वों के फेंके चिलग़ोज़ों, सूखी टहनियों ग्रौर पुरानी काई को हटा-हटाकर ग्रंगूठी ढूंढ़ने लगी। एक काली पत्ती के नीचे झिलमिलाहट सी हुई। ख़ुशी के मारे वार्या की चीख निकल गई। पैरों के बल बैठकर उसने देखा—यह लोहे की ग्रंगूठी ही थी! उसे ज़रा भी ज़ंग न लगा था।

वार्या ने ग्रंगूठी उठाई, बिचली उंगली में पहनी ग्रौर घर भाग चली।

दूर से ही उसने कुज़्मा दादा को देख लिया। वह घर से बाहर निकल ग्राए थे ग्रौर दीवार के पास बनी मिट्टी की मुंडेर पर बैठे थे। तंबाकू का नीला धुग्रां दादा के ऊपर सीधे ग्रासमान तक उठ रहा था, मानो कुज़्मा दादा वसंती धूप में सूख रहे हों ग्रौर उनके ऊपर भाप उठ रही हो।

"देख री, शैतान," दादा ने कहा, "तू बाहर भाग गई ग्रौर दरवाज़ा बंद करना भूल ही गई। घर में वसंती हवा फैल गई ग्रौर बीमारी ने फ़ौरन मेरा पीछा छोड़ दिया। ग्रभी थोड़ा तंबाकू पी लूं, फिर कुल्हाड़ी लेके लकड़ी चीरता हूँ। हम ग्रलावघर गरम करेंगे ग्रौर रई की रोटियां पकाएंगे।"

वार्या हंस पड़ी। उसने दादा के झबरीले, पके बालों पर हाथ फेरा और बोली:

"शुक्र है अंगूठी का! उसने तुम्हें ठीक कर दिया, दादा!"

वार्या सारे दिन अंगूठी बिचली उंगली में पहने रही ताकि दादा की बीमारी पूरी तरह से चली जाए। बस शाम को ही बिस्तर में लेटते समय उसने अंगूठी बिचली उंगली से उतारकर अनामिका में पहन ली। इसके बाद बहुत ही बड़ी ख़ुशी की बात होनी चाहिए थी। लेकिन कुछ हो ही नहीं रहा था। वार्या इंतज़ार करती रही, करती रही और ऐसे ही सो गई।

सुबह तड़के ही वह उठ बैठी और कपड़े पहनकर बाहर चली गई।

धरती पर उषा का उजाला फैल रहा था। चारों ओर खामोशी छाई हुई थी। आकाश के किनारे अभी भी आख़िरी तारे चमक रहे थे। वार्या जंगल की ओर चल दी। जंगल के किनारे पंहुचकर वह रुक गई। यह क्या बज रहा है जंगल में? मानो कोई संभल-संभलकर घंटियां बजा रहा हो।

वार्या झुकी, कान लगाकर सुनने लगी और दंग रह गई: गुलचांदनी के सफ़ेद-सफ़ेद फूल धीरे-धीरे लहरा रहे थे, उषा के स्वागत में सिर हिला रहे थे और चांदी के तारों से झनझना रहे थे। चीड़ की चोटी पर कठफोड़वे ने पांच बार चोंच मारी।

"पांच बजे हैं," वार्या ने मन ही मन कहा। "कितनी भोर है और कैसी शांति है चारों ओर!"

उसी क्षण ऊपर कहीं पेड़ की शाखा पर उषा के सुनहरे उजाले में पीलक पंछी गा उठा।

वार्या मुंह बाए खड़ी सुन रही थी और मुस्कराती जा रही थी। प्यारी-प्यारी गरम हवा का तेज़ झोंका आया, वार्या के पास ही कहीं सरसराहट सी हुई। झाड़ियां झूमने लगीं और झुमकों जैसे उनके फूलों का पीला पराग झड़ा। कोई अनदेखा टहनियों को धीमे से हटाता हुआ वार्या के पास से निकल गया। कोयल उसके स्वागत में सिर झुका-झुकाकर कूकने लगी।

"यह कौन गुज़रा? मैं तो देख ही नहीं पाई!" वार्या ने सोचा।

वह नहीं जानती थी कि उसके पास से वसंत रानी गुज़री है।

वार्या खिलखिलाकर हंसी। उसकी हंसी सारे जंगल में गूंज गई। वह घर भाग चली। उसका मन ख़ुशी से भर उठा था, नाच-झूम रहा था।

दिन पर दिन वसंत का रंग चढ़ता जा रहा था। वसंती धूप इतनी तेज़ थी कि कुज़्मा दादा की आंखें सिकुड़-सिमट सी गईं, लेकिन उनमें सदा मुस्कान बनी रहती थी। फिर मानो किसी ने जंगलों-मैदानों में, खेतों-चरागाहों में, नालों-खड्डों में जादूई पानी छिड़क दिया—एकाएक चारों ओर हज़ारों-हज़ार रंग-बिरंगे फूल खिल उठे।

वार्या तर्जनी में अंगूठी पहनना चाहती थी, ताकि चमत्कारों भरी दुनिया देख सके। लेकिन उसने इन सब फूलों और भोजवृक्षों की चिपचिपी कोंपलों को, निर्मल आकाश और चमकते सूरज को देखा, मुर्गों की बांगें, पानी का कलकल-स्वर और खेतों-मैदानों में गाती चिड़ियों के गीत सुने और अंगूठी तर्जनी में नहीं पहनी।

"फिर कभी देखा जाएगा," वार्या ने सोचा। "दुनिया भर में हमारे मोख़ोवोये से अच्छी जगह और कोई नहीं हो सकती। कुज़्मा दादा ऐसे ही तो नहीं कहते कि हमारे यहां सच्चा स्वर्ग है और सारे संसार में इतनी अच्छी जगह और कहीं नहीं!"